International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 10-09-2020; Accepted: 25-09-2020; Published: 11-10-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 5; 2020; Page No. 91-93

बदलते साहित्यिक परिदृश्य में मिथकीय उपन्यासों की प्रासंगिकता

साधना यादव
शोध अध्येता, हिन्दी विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

समय निरन्तर अपनी गति से चलायमान है। आज हम इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के आखिरी मुहाने पर हैं। इन दो दशकों में समाज, संस्कृति, जीवन शैली में बहुत परिवर्तन हुए हैं, जिनका साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ा है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं अपितु मानव जीवन की समीक्षा है। आदिकाल से लेकर अब तक साहित्य में अपने समय समाज का बोध निरन्तर उद्घाटित होता रहा है। जिसकी सहायता से उन कालों को समझना सरल हो जाता है। भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिकता ने मानव जीवन में बखूबी प्रवेश कर लिया है। मनुष्य ने नैतिकता, परम्परा, आस्था, मूल्य और धर्म की व्यवस्था को चुनौतियां दी हैं। अनेक सामाजिक, वैचारिक, नैतिक, यौन दमन के विरुद्ध आवाज भी मुखर रूप से उठाई है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक पहलुओं से दूरी बनाकर आत्म बोध को प्रमुखता दी है। इक्कीसवीं सदी पूर्ण से खंडन, विश्वास से अविश्वास, आस्था से अनास्था, संयुक्त से एकाकी के मंडन का युग है।

इक्कीसवीं सदी के इन दो दशकों में मानव ने अपार प्रगति के साथ समृद्धि की अनेक सीढियां चढ़ी हैं। साहित्य भी नित नवीन रूपों को प्राप्त करने में सफल रहा है। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, आलोचना आदि विधाओं ने साहित्य के विविध आयामी होने का परिचय दिया है। दो दशकों के साहित्य में अस्मिता का प्रश्न, व्यक्ति स्वातंत्र्य, रिश्तों में बिखराव, स्वानुभूति पर बल, कल्पना से यथार्थ दुनिया की यात्रा, पूंजीवादी सत्ता से विमुख लोक सत्ता का प्रश्न, जल जंगल जमीन की लडाई, भोग की अन्धाधुन्ध संलिप्तता में स्त्री और प्रकृति के संरक्षण का चिन्तन, ऐसे अनेक समसामयिक विषयों को जगह देकर साहित्य ने अपना दायरा बढा लिया है।सामाजिक सरोकारों में उपेक्षित वर्ग ने अस्मिता को बचाने के लिए अनेक स्तरों पर मुहिम चलाई है, इनका सायास और सारगर्भित रूप साहित्य में देखने को मिलता है।

साहित्य में मिथकों को आधार बनाकर आदिकाल से रचनाएं की जाती रही हैं। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में मिथकों को आधार बनाकर समाज की विद्रूपताओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। बीसवीं सदी के लेखकों में नरेन्द्र कोहली, यशपाल, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, मनु शर्मा आदि ने अपने साहित्यिक आइने में यथार्थ जगत की हकीकतों का चित्रण मिथकों को आधार बनाकर किया। भारतीय समाज में मिथकों का व्यापक प्रभाव है शायद यही कारण है कि अपने समाज को निरन्तर सही दिशा में अग्रसर करने के लिए साहित्यकारों ने इसे अपना हथियार बनाया। मिथक प्रत्येक काल में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने में सक्षम है। किसी देश की संस्कृति को जानने के लिए मिथकों का अध्ययन आवश्यक है– "मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय हो सकते हैं, क्योंकि इनमें ज्ञानेन्द्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव पुंज निहित हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।"[1]

मिथक केन्द्रित साहित्य की प्रमुख विशेषता है– समकालीन सन्दर्भों में मिथकीय कथाओं का चित्रण। इसे ही आधार बनाकर इक्कीसवीं सदी में मनु शर्मा का 'गांधारी की आत्मकथा' (2004), पद्मा सचदेवा का 'भटको नहीं धनंजय' (2005), चित्रा चतुर्वेदी का 'अम्बा नहीं मैं भीष्मा' (2006), नरेन्द्र कोहली का 'वसुदेव' (2007) और 'कुन्ती' (2012), मृदुला सिन्हा का 'सीता पुनि बोली और परितप्त लंकेश्वरी' (2015), ब्रजेश के वर्मन का विश्वामित्र (2010), आशा प्रभात का मैं जनक नंदिनी (2017), काशीनाथ सिंह का 'उपसंहार' (2014), आशुतोष गर्ग का 'अश्वत्थामा' (2017), डॉ. पवन विजय का 'बोलो गंगापुत्र' (2018), किरण सिंह का 'शिलावहा', मीनाक्षी नटराजन का 'अपने–अपने कुरुक्षेत्र' (2019), वीरेन्द्र सारंग का 'जननायक कृष्ण' (2019), शरद सिंह का 'शिखंडी' (2020) आदि हिन्दी के प्रमुख मिथक चरित्र प्रधान उपन्यास हैं जो वर्तमान और अतीत के बीच संपर्क सूत्र स्थापित करते हैं, यूँ कहें कि– "जब हम आधुनिक मिथकों की बात करते हैं तो उसमें भी ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रासंगिकता स्वयं स्पष्ट है।इसी सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह परिवर्तन नये विश्वासों तथा ज्ञान के नए क्षितिजों के साथ नए मिथकों का निर्माण करता है और युग की मांग के अनुसार पुराने मिथकों का पुनर्विवेचन एवं नया रूपांतरण करता है।"[2] मिथकों के माध्यम से अतीत को समझा ही नहीं गया अपितु वर्तमान एवं भविष्य का अन्वेषण भी इन उपन्यासों में किया गया है। चरित्रों को परम्परागत ईश्वरीय रूप से बाहर निकालकर मानवीय रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया गया। आज वैश्वीकरण के दौर में मिथकीय कथाओं के माध्यम से अतीत की तरफ मुडना, यथार्थ परक चित्रण करना यह स्पष्ट करता है कि वर्तमान और भविष्य के अनेक प्रश्नों के जवाब इन मिथकीय कथाओं में छिपे हुए हैं। वर्तमान समाज की समस्याओं का चित्रण इन मिथकीय कथाओं की आड़ में किया गया है। मिथकीय उपन्यासों में आधुनिक जीवन बोध, विविध विमर्शों का समावेश, पूर्वाग्रह मुक्त वैज्ञानिक दृष्टि आदि का प्रयोग किया गया है जिससे रचना अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करती है। इन सभी बिन्दुओं को समझने के लिए कुछ मुख्य मिथकीय उपन्यासों को सन्दर्भित किया जाना आवश्यक है।

मनु शर्मा द्वारा रचित 'गांधारी की आत्मकथा उपन्यास सन् 2004 में प्रकाशित हुआ। अनेक चरित्र जो अंधेरे में चले जाते हैं उन्हें फिर से उजागर करने का कार्य इस उपन्यास के माध्यम से हुआ। विवेकवान स्त्री गांधारी की नजरों से महाभारत को देखने, राजकुमारी से अंधे राजा की भार्या एवं सत्ता मोहित पुत्र की माँ की आत्मकथा है। मन से सत्य का वरण करते हुए भी शरीर से असत्य के खेमे में खड़ी स्त्री के मन को कभी टटोला नहीं गया।

गांधारी की यही मनोव्यथा पूरे समाज को कटघरे में खड़ा करती है कि क्या स्त्री का अपना सत्व नहीं है, पुरूषों के निर्णय में स्त्री को स्वतः अमूर्त रूप में सहभागी क्यों मान लिया जाता है। स्त्री की अपनी व्यक्तिगत पहचान कब होगी, क्या वह पिता, पति, पुत्र के संबंधों से परे कुछ नहीं है। समाज से ऐसे कठोरतम प्रश्नों को करते हुए यह उपन्यास स्त्री मन से स्त्री को देखने, समझने की अपील करता है। कह सकते हैं कि स्त्री विमर्श के सभी आयामों को अपने भीतर समाहित किये हुए मिथक चरित्र के बहाने आज की स्त्री से संवाद स्थापित करता उपन्यास है।

पद्मा सचदेवा विरचित 'भटको नहीं धनंजय (2005)' उपन्यास कृष्ण सखा, कुन्ती पुत्र, युधिष्ठिर के अनुज के रूप में अर्जुन को न देखकर द्रौपदी के पति के रूप में देखता है। अपनी पत्नी को अपने भाइयों में बंटा देखकर अर्जुन का हृदय द्रवित हो उठता है, पूरे जीवन वह इस विषाद में पड़ा रहता है। पति–पत्नी का संबंध एकाधिकार की मांग करता है, ऐसे में अर्जुन नियति द्वारा छले जाते हैं। स्त्री मन की त्रासदी का चित्रण अनेकों साहित्यकारों ने किया है परन्तु पुरूष के जीवन को आधार बनाकर यह उपन्यास एक नये आयाम को प्रस्तुत करता है।

चित्रा चतुर्वेदी द्वारा रचित 'अम्बा नहीं मैं भीष्मा' (2006) उपन्यास एक ऐसी नारी के जीवन से हमें जोड़ने का प्रयास करता है, जो भीष्म के समान प्रतिज्ञा करती है, उसे पूर्ण करने के लिए प्राणपण से लगी है। अम्बा के चरित्र के माध्यम से समाज की रुढ़िगत मानसिकता के कारण स्त्रियों को होने वाले दुखों का सायास चित्रण किया है। प्रत्येक युग का समाज स्त्री के लिए भयावह होता है, उसे रुढि, परम्परा, संस्कृति के नाम पर अनेक बंधनों में जकड़े हुए है। स्त्री की कार्यप्रणाली को पुरूष की तुलना में कम महत्व दिया गया, अम्बा समाज की इन्ही विसंगतियों में फंसी है। इन्ही पीड़ाओं का चित्रण वर्तमान सन्दर्भो में किया गया है, जो अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने में सक्षम है।

मिथक चरित्र प्रधान उपन्यास लेखकों में नरेन्द्र कोहली का नाम अधिक प्रतिष्ठित है। अपने उपन्यास वसुदेव (2007) में कृष्ण को योगमाया से निकालकर मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। वसुदेव और देवकी के जीवन संघर्षो का चित्रण करते हुए कंस के अत्याचारों और उससे मुक्ति का वर्णन उपन्यास में किया गया है। राजा जब क्रूर और आतातायी हो तो कोई भी सहयोग करने के लिए नहीं आता ऐसे में वसुदेव और देवकी अपनी सन्तानों के वध को अपने सामने देखते हैं। व्यक्ति की एक सहन सीमा होती है उसके बाद वह सहनशीलता छोड़ देता है, इसी का परिणाम कृष्ण का जीवन है। अन्याय के खिलाफ सहनशीलता का त्याग करके न्याय की स्थापना की जानी चाहिए, यह प्रत्येक समय समाज की मांग के अनुरूप किया जाना चाहिए। माता–पिता के संघर्षो से प्रेरित होकर कृष्ण समाज में उपस्थित अनेक अन्यायी राजाओं के पतन में मुख्य भूमिका निभाते हैं। मथुरा से कुरुक्षेत्र तक की कथा इसी का पर्याय है। माता–पिता के कार्य बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं, कृष्ण इसका उदाहरण हैं। लेखक मिथक के बहाने आज के माता–पिता और परिवार को एक नई व्यवस्था से जोड़ने की इच्छा रखता हैं और समाज को नया संस्कार देना चाहता है।

नरेन्द्र कोहली का ही दूसरा उपन्यास कुन्ती (2012) है, जिसमें कुन्ती आज की स्त्री के करीब दिखाई देती हैं। सुख का राजमहल या झोपड़ी से कोई संबंध नहीं है। राजमहल में रहकर भी कुन्ती अपने अतीत को कभी भूल नहीं पातीं और दुखी है। अपने कुंवारी अवस्था में उत्पन्न पुत्र को त्यागने का दुख उनका कभी पीछा नहीं छोड़ता। नरेन्द्र कोहली अपने चरित्रों को समय की सीमा से परे दिखाते हैं, कुन्ती भी अनेक कठिनाइयों से जूझते हुए वर्तमान स्त्री से संवाद करती है।

आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत मृदुला सिन्हा का उपन्यास सीता पुनि बोली (2007) अपने छोटे कलेवर में वृहद् जीवन दृष्टि एवं वर्तमान मानकों के बीच अनेक आदर्शों की स्थापना का उपन्यास है। मिथकीय चरित्र समय समाज के अनुरूप ढलते हुए प्रत्येक युग में प्रासंगिक दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास शास्त्रसम्मत सीता से परे लोक मन से सीता को देखने समझने की पैरवी करता है। सीता प्रतिरोध और आदर्श दोनों को लेकर चलती हैं जिससे उनका चरित्र अधिक जटिल हो जाता है। अनेक आदर्शों को गढ़ते हुए भी स्त्री के प्रति समाज की हेय दृष्टि, उसके अधिकारों के प्रति उदासीनता को व्यंजित किया गया है। स्त्री को सभी संबंधों के ऊपर जननी के रूप में देखना सर्वाधिक उचित है– ''स्त्री मात्र जननी ही होती है। प्रकृति ने उसे यही दायित्व सौंपा है। उसके सारे अन्य सामाजिक संबंध उस पद तक पहुँचने और सहेजने की सीढियाँ हैं।''[3] अपनी माँ की भूमिका का निर्वाह करके सीता महाप्रयाण करती हैं परन्तु स्त्री का ऐसा विरोध सत्य जगत में हो अथवा मिथ्या जगत में, यह समाज को सहन नहीं होता इसलिए उसे धरती के बीच चुनवाने की रणनीति की जाती है। स्त्री मन को एक नये रूप में स्थापित किया गया है।

विश्वामित्र के उज्जवल चरित्र को आधार बनाकर लिखा हुआ ब्रजेश के वर्मन का उपन्यास विश्वामित्र (2017) राष्ट्र की संकल्पना से प्रेरित है।उपन्यास का कथानक राम की दीक्षा से शुरू होकर सीता स्वयंवर पर खत्म हो जाता है। बीच में पूर्व दीप्ति पद्धति का प्रयोग किया गया है। विश्वामित्र एक राष्ट्र एक जाति एक धर्म की मुखालफत करते हुए वर्तमान नायक की भूमिका का निर्वाह करते हैं। भारतवर्ष की कल्पना में जाति का त्याग आवश्यक मानते हैं– "जातिवादी कुएं के मेंढको और ऊपर उठो। बाहर आओ कुएं से। इस विशाल विश्व का नेतृत्व अगर भारतवर्ष से होना है तो उसका संचालन जातिवाद के कुएं में बैठकर नहीं हो सकता।"[4] राष्ट्र के साथ स्त्री के अधिकारों को जोड़ते हैं। शची और अहिल्या के माध्यम से स्त्री जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण किया गया है। स्त्री को बराबरी का दर्जा देते हैं। विश्वामित्र का चरित्र मिथकीय न होकर हमारे बीच का लगने लगता है, जो समदर्शी होकर न्याय एवं संविधान सम्मत राष्ट्र की संकल्पना को लेकर समाज को नई दिशा देना चाहता है। वर्तमान समाज एक दिशाहीन नियति की तरफ निरन्तर अग्रसर हो रहा है ऐसे में रचनाकार विश्वामित्र जैसे चरित्र को नायक की भूमिका में देखकर उम्मीद की नई किरण जगाता है।

उत्तर महाभारत की कथा को आधार बनाकर काशीनाथ सिंह ने उपसंहार (2014) उपन्यास की रचना की है। अपने कार्यों से अपने जीवन में देवत्व का स्थान प्राप्त करने वाले कृष्ण युद्ध पश्चात एक निरीह मानव की कड़ी में खड़े हो जाते हैं। असत्य पर सत्य की जीत क्या छल के द्वारा नहीं की गई। इतने बड़े नरसंहार के बाद क्या कोई राष्ट्र सुखी हो सकता है, कदापि नहीं। वर्तमान समाज की अनेक विसंगतियों का चित्रण– जुआ–खोरी, शराब, वर्ण–व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था की कमियां, स्त्री के अधिकारों का हनन इन सभी का वर्णन किया गया है। जाति एक कोढ़ के रूप में समाज में व्याप्त है, भीतर ही भीतर समाज को खोखला करने में सक्षम है। कृष्ण जाति को लेकर अपने दाऊ से कहते हैं– "एक प्रश्न मेरे मन में बराबर गूंजता रहता है तब भी और अब भी कि क्या मनुष्य का मनुष्य होना काफी नहीं है? फिर उसे वर्णो में क्यों बांटा गया ? क्यों कहा गया कि यह क्षत्रिय है, यह ब्राम्हण है, यह वैश्य, यह शूद्र।"[5] रचनाकार ने समय की सबसे बड़ी मांग की तरफ इशारा किया है, अब मनुष्य को मनुष्य समझा जाए, न कि वर्गों में विभक्त करके देखा जाए।

मिथकीय चरित्रों को आधार बनाकर लेखकों ने अपने समाज की अनेक चिन्ताओं को प्रकट किया है। इक्कीसवीं सदी का साहित्य अस्मिता के नये आयामों को व्याख्यायित करने में लगा हुआ है। इसके लिए वह अनेक कल्पनाओं, मिथकों और यथार्थ चरित्रों का प्रयोग अपने साहित्य में निरन्तर कर रहा है। मिथकीय चरित्र युग

के बंधनों से मुक्त हैं, उनकी व्याख्या युगानुकूल होती रही है, आगे भी निरन्तर जारी रहेगी। वही साहित्य प्रासंगिक होता है जिसमें अपने समय समाज के वर्तमान एवं भविष्य की अनुगूंज निहित होती है, मिथकों को आधार बनाकर लिखे गए इन उपन्यासों में यह कला निर्भीक रूप से विद्यमान है। सीता, कुन्ती, गांधारी, अहिल्या आदि स्त्री चरित्र मिथक से वर्तमान की यात्रा करती हैं। देवत्व से मानवता की पृष्ठभूमि पर चरित्रों को लाने का अनुपम कार्य लेखकों ने किया।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. अमरनाथ : हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ–282
2. सिंह, डॉ. वीरेन्द्र : मिथक दर्शन का विकास, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ–95
3. सिन्हा, मृदुला : सीता पुनि बोली, विद्या विहार नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ–238
4. वर्मन, ब्रजेश के. : विश्वामित्र, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2012, पृष्ठ–177
5. सिंह, काशीनाथ : उपसंहार उत्तर महाभारत की कथा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ–66